## अध्याय सोलवाँ

### ॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढाय नमः॥

"मुनिजनों को वंदनीय होने वाले हे सतगुरु सिद्धनाथजी, आप की जयजयकार हो। मेरे हृदय रूपी कमल में निवास करने वाले गुरुनाथजी, मेरी मदद कीजिए। निर्मल सगुण रूप धारण किए हुए सतगुरुनाथजी, मुझे आप का स्तवन करने की प्रेरणा दीजिए। अभय प्रदान करने वाले हे ईश्वर, मैं आप के दिव्य चरणों को वंदन करता हूँ।"

सतगुरु सिद्धारूढ़ स्वामीजी की जयजयकार हो। हे सतगुरुनाथजी, मैं दीन भाव से आप को वंदन कर रहा हूँ, आप का दिव्य रूप मेरे हृदय में प्रकट हो, इसलिए आप कृपा कीजिए। अगर आप की कृपा हो, तो इस त्रिभुवन में क्या असंभव है? हे सारा ब्रह्मांड आप ही ने निर्माण किया है और यह माया का फैलाव भी एक पलभर में आप ही नष्ट करते हैं। आप के अनुपम नाम की ऐसी महिमा है, जो भी आप के नाम का निरंतर जप करता है, स्वयं ब्रह्म (चैतन्य) उसकी पूजा करता है। ऐसे मनुष्य के सामने अष्टसिद्धि (अणिमा, महिमा आदि) हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती हैं। ऐसा मनुष्य धनसंपत्ति का पूर्ण रूप से त्याग करता है। ऐसा मनुष्य ईश्वर के स्थान की कामना करता है, जो नामजप से शीघ्र ही प्राप्त होता है। गुरुकृपा भी नामजप से ही प्राप्त होती है। ऐसे मनुष्य को गुरुकृपा से, ईश्वर का स्थान जो निर्गुण, निराकार ब्रह्म है, वह प्राप्त होता है और व्दैत (जीवात्मा तथा परमात्मा ये दोनों भिन्न हैं ऐसा भेद मानना) भाव का निराकरण होकर वह मनुष्य पूर्णतः सुखी होता है। ऐसे मनुष्य को इस जगत में हर जगह सतगुरुजी ही दिखाई देते है तथा शुभ, अशुभ, पाप, पुण्य एकसमान लगने लगते है। उसके हृदय में आत्मस्वरूप दिखाई पड़ता है और अपना, पराया ऐसी भावना नष्ट हो जाती है। उसके मन का उच्चता, नीचता इस प्रकार का भेद नष्ट हो जाता है, तथा ऐसा मनुष्य सम्मान और अपमान की ओर ध्यान नहीं देता। ऐसे मनुष्य की दृष्टि में विधिपूर्वकता तथा विधिविरुद्धता ऐसा भेद नहीं रहता। ऐसा महात्मा निरंतर नामजप में व्यस्त होने के कारण, उसके हृदय में सतगुरुजी हमेशा निवास करते हैं, जिनकी अद्‌भुत

महिमा का बयान हजार मुखों से करना भी असाध्य है। ऐसा मनुष्य सतगुरु के स्वरूप से एकरूप होने के बावजूद भी शिष्य होने का भाव मन में रखते हुए हमेशा शांति तथा अभिमानरहित वृत्ति से सेवा करता है। श्रोतागण, अब सिद्धारूढ़ स्वामीजी की जीवनी सुनिए, जिसे सुनकर तथा उसपर चिंतन करने से पूर्ण रूप  से ज्ञान प्राप्ति होती है।

सिद्धाश्रम में प्रतिदिन महिला तथा पुरुष भक्तगण भोजन के पदार्थ लेकर आते थे और सबसे प्रथम वे पदार्थ सतगुरुजी को अर्पण करने के पश्चात सभी मिलबाँटकर वे खाद्य खाते थे। इस प्रकार एक दिन अनेक भक्तगण भोजन के पश्चात भजन कर रहे थे। सतगुरुजी विश्राम के लिए जाते ही वे सब नजदीक के तालाब के किनारे गए। वहाँ पेड़ की छाँव में सभी भक्त विश्राम कर रहे थे, तब कुछ बालक खेलने के लिए तालाब के किनारे गए। खेलते खेलते उन्हें वहाँ एक साँप दिखाई पड़ा। चार हाथ लंबा वह साँप धूप में लेटा हुआ देखकर एक बालक ने उसपर एक पत्थर फेंका। पत्थर से चोंट पहुँचने के कारण क्षुब्ध हुए साँप ने फन उठाकर उस बालक की ओर देखा तथा तत्काल रेंगता हुए उसके पास आकर उसके पाँव अपने पाश में जकड़ लिए। इतना ही नहीं, उसे जकड़ने के पश्चात क्रोध से साँप उस बालक को डसने लगा, उस बालक के अपने आप को साँप के पाशों से छुड़ाने के सारे प्रयत्न विफल हुए। साँप ने उसके शरीर पर कई बार दंश किये, व्याकुल हुआ वह बालक जोरजोर से रोने लगा। उस बालक की स्थिति देखकर बाकी के सारे बालक वहाँ से दूर भाग गये। कुछ भी न सूझने पर उन बालकों ने उस बालक के माता पिता को आवाज देकर बुलाया। उस बालक के मातापिता ने वह भीषण दृश्य देखते ही वे एकदम आक्रोश करने लगे। उस बालक की माता तड़पती हुई बोली, "बेटे, स्वयं को उस साँप से छुडा लो। मेरे प्राण निकले जा रहे हैं, तुम्हारी ये हालत देखकर मेरे हाथपाँव फूल गये हैं, साँप को देखकर मैं भयभीत हो गयी हूँ।" इतने में उस बालक के पिता वहाँ पहुँचे, परंतु वह दृश्य देखकर वे भी पिछे हट गये। बालक की माता जोरजोर से रोने लगी, बाकी के सभी लोग चकरा गये थे तथा दुखी हुए थे। वह बालक इधर से उधर भागने का प्रयास कर रहा था और लड़खड़ाकर गिर रहा था। फिर से एक जगह खड़ा रहकर रो रहा था; परंतु किसी भी परिस्थिति में साँप उसे छोड़

नहीं रहा था। उस बालक का पिता अपनी पत्नी से बोला, "कुछ भी करने से, अब अपना बेटा बच नहीं सकता, वह स्वयं साँप के पास गया था। अब रोने से क्या होनेवाला है?" सभी लोग दूर खड़े होकर चिल्ला रहे थे, लेकिन उनमें से किसी एक ने भी आगे बढ़कर उस बालक को साँप से छुड़ाने का प्रयास नहीं किया। इतने में किसी ने जाकर सतगुरुजी तक यह खबर पहुँचाई। जहाँ सभी लोग आक्रोश करते हुए केवल एक दर्शक की भाँति खड़े होकर वह दृश्य देख रहे थे, वहीं दयालु सतगुरुजी दौड़ते हुए चले आये। साँप का पाश छुड़ाने के लिए किसी ने जाकर एक लंबी लाठी लाई, परंतु उस लाठी की सहायता से साँप को अलग करना संभव न हुआ और उस बालक के पास जाने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। उस समय सभी लोगों को दूर हटाकर सिद्धारूढ़जी वहाँ पहुँचे और सीधे उस बालक के समीप गये। एक हाथ से उन्होंने साँप का फन पकड़ा और दूसरे हाथ से बालक को संभला। उन्होंने ताकत लगाकर साँप को बालक से झटका लगाकर दूर किया, जिससे वह बालक साँप के पाश से मुक्त हो गया। सिद्धनाथजी ने साँप को दूर फेंक दिया, जहाँ वह निश्चल होकर पड़ा रहा। लोगों की ये कैसी रीत है? हालाँकि माँ बाप का प्रेम अद्भुत होता है, फिर भी संकट के समय सतगुरु के बिना कोई रक्षा नहीं कर सकता। इसीलिए सतगुरुजी यहीं सच्चा मित्र है| जब तक किसी से मदद मिलती रहती है, तब तक उस मनुष्य को सभी "मेरा अपना" कहते हैं, परंतु संकट के समय सतगुरु के बिना कोई उसके काम नहीं आता। जिसके चरणों में शरणागत होने से दुख दूर हो जाते हैं, ऐसे सतगुरुजी ही संकट में हमारे मित्र होते हैं, लोगों को दुखों से मुक्त करने के लिए ही उसने अवतार धारण किया रहता है। इसीलिए, जब तक मृत्यु झपटती नहीं, तबतक सतगुरुचरणों में शरणागत हो जाईए, जो सतगुरु दयालु होते हुए भी किसी के गुणदोष नहीं देखते। अस्तु| जब महाराज ने बालक के संपूर्ण शरीर पर सर्पदंश के निशान देखे, तब उन्होंने अपना अमृत रूपी  हाथ उसके शरीर पर फेरते ही वह बालक सर्पदंश के विषबाधा से मुक्त हुआ। उसके पश्चात उस बालक को मठ में ले जाकर सिद्धारूढ़जी ने उसे माथे पर भस्म लगाया और कहा, "अब तुम्हें सर्पदंश से कोई बाधा नहीं पहुँचेगी। अब तुम चैन से रहो।"

भक्तों को अभय देना यही जिनका बाना है ऐसे सतगुरुनाथजी अनाथ और दीन जनों का हमेशा रक्षण करते हैं।

श्रोतागण, अब इस कथा का लक्ष्यार्थ सुनिए। जीवात्मा बचपन में अपना हित और अहित किस में है, ये न समझने के कारण विषयोपभोगों में रत होता है। मानो विषयोपभोगों के प्रदेश में खेलते खेलते, मन रूपी पत्थर मोह रूपी साँप पर फेंकता है। क्रोधित हुआ मोह रूपी साँप अज्ञानी जीवात्मा को अपने पाशों मे जकड़कर उसे बार बार डसता है। जब मोह अपने पाशों में जीवात्मा को जकड़ लेता है, तब जीवात्मा तड़प उठता है तथा उसे कोई उपाय नहीं सूझता। उस समय सतगुरुनाथ जीवात्मा को मोह से छुड़ाते हैं। विष से भरे घाव यानी की पूर्वजन्म के पापों के संस्कार, जो बोध तथा मनन रूपी भस्म लगाते ही ऐसे संस्कारों का बीज नष्ट हो जाता है। जो दीन जन घरगृहस्थी से ऊब गये होते हैं, ऐसे लोगों की रक्षा करने हेतु ही सतगुरुजी अपनी कृपा का विशेष रूप से उपयोग करते हैं। हे सिद्धनाथजी, आपको मेरा शत शत प्रणाम, आप के चरणों पर मेरी श्रद्धा दृढ़ हो, इसलिए मैं आप को वंदन करता हूँ। मुझे पार लगाने के लिए आप तैयार हो जाईए। मैं इस सांसारिक जीवन में बंध गया हूँ, मेरी बुद्धि शुद्ध नहीं रही, तो मेरी प्रार्थना आप कैसे सुन पाएंगे? फिर भी मेरी बुद्धि मुझ से कह रही है की, कुछ कालावधि के पश्चात आपकी मुझ पर कृपा होगी और इसीलिए मैं धीरज नहीं छोड़ रहा हूँ| जब आप की कृपा होगी तब एक क्षण में सारे भवबंधन टूट जाएंगे, उस पावन दिन की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। श्रोतागण, अब सावधानता से अगले अध्याय में बयान की हुई कथा एकाग्र मन से सुनिए, जिससे अज्ञान का अंधेरा मिट जाएगा। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह सोलवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥